(क) मन-शरीर-संबंध समस्या

(Problem of Mind-Body Relation)

मानव अस्तित्व में साधारणतः शरीर तथा मन नामक दो सत्ताओं का समावेश माना जाता है। इन दोनों का मौलिक स्वरूप क्या है, इस बारे में अनेकों प्रश्न तथा विवाद हो सकते हैं, पर शारीरिक तथा मानसिक दोनों प्रकार की क्रियाएँ मानव अस्तित्व में संपन्न होती हैं इसमें शायद ही विवाद है। यह भी प्रायः निर्विवाद ही है कि शारीरिक तथा मानसिक क्रियाएँ परस्पर संबंधित हैं – शारीरिक क्रियाएँ मानसिक क्रियाओं को प्रभावित करती हैं तथा मानसिक क्रियाएँ शारीरिक क्रियाओं को। अब प्रश्न उठता है कि दोनों के बीच यह संबंध कैसे संभव होता है, यानी दोनों किस तरीके से एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं। *डेकार्ट* जैसे विचारक के इस मत के आलोक में कि शरीर तथा मन के बीच एक घोर द्वैत है, दोनों में एक-दूसरे के विरोधी तत्त्व मौजूद है, मन तथा शरीर के बीच संबंध विषयक प्रश्न और भी उग्र रूप धारण कर लेता है। आखिर ऐसे दो विरोधी तत्त्व परस्पर संबंधित किस प्रकार होते हैं, दोनों को एक-दूसरे को प्रभावित करने की सचमुच कौन-सी विधि है ? इस प्रश्न के उत्तर-स्वरूप कई सिद्धान्त उपस्थित किये गये हैं जिनकी एक संक्षिप्त चर्चा हम यहाँ करेंगे :—

1. क्रिया-प्रतिक्रियावाद *(Interactionism)*

एक समाधान यह कहकर उपस्थित किया जाता है कि मानसिक तथा शारीरिक क्रियाओं में (और उसी प्रकार दूसरी तरफ से देखने पर शारीरिक तथा मानसिक क्रियाओं में) कारण-कार्य संबंध है। शारीरिक क्रियाएँ मानसिक क्रियाओ द्वारा उत्पन्न की जाती हैं तथा मानसिक क्रियाएँ शारीरिक क्रियाओं द्वारा।

पर इतना भी कहने से शायद बात स्पष्ट नहीं होती। कहा जा सकता है कि सिर्फ यह कहने से एक एक-दूसरे का कारण है, बात आगे नहीं बढ़ती। एक कारण है और दूसरा कार्य,. तो आखिर किस रूप में, किस क्रियाविधि (mechanism) से एक-दूसरे पर कार्य करता है कि दूसरे में कोई प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है ? जब तक इस बात का खुलासा नहीं होगा, तबतक समस्या स्पष्ट नहीं होगी। शायद इसी खुलासा के चक्कर में *डेकार्ट* ने पिनियल ग्रंथि (Pineal gland) नामक एक ग्रंथि को मस्तिष्क (brain) के किसी केन्द्र में अबस्थित माना जिसके अन्दर उनके अनुसार मन का निवास है। जब कोई शारीरिक क्रिया होती है तो वह स्नाचविक प्रवाहों (Nerve currents) द्वारा पिनियल ग्लैंड में पहुँचती है जहाँ मन अवस्थित होता है, फलतः उसमें क्रिया उत्पन्न हो जाती है। उसी प्रकार मन के क्रियाशील होने पर फिर पिनियल ग्लैंड के माध्यम से उसका असर मस्तिष्क में तथा स्नायुमंडल में पड़ता है, फलतः शरीर क्रियाशील हो जाता है। इस प्रकार *डेकार्ट* एक स्थूल तथा ठोस रूप में शरीर तथा मन की क्रिया-प्रतिक्रिया का विवरण प्रस्तुत करना चाहते हैं, पर उनका सारा प्रयास यहाँ हास्यास्पद बनकर रह जाता है। वे खुद भी मानते हैं कि मन एक अमूर्त सत्ता है जो

Scanned by TapScanner

जड़-तत्त्व (Matter) की तरह निश्चित स्थान पर अवस्थित होकर कोई स्थान नहीं छेकता, पर यहाँ तो मन का जो चित्र वे खींचते हैं वह बिलकुल स्थूल प्रकार का मालूम पड़ता है औरउनके द्वारा वर्णित सारी क्रिया-प्रतिक्रिया कृत्रिम मालूम पड़ती है।

यहाँ समस्त कठिनाई की जड़ में है यह सोच कि किन्हीं दो तथ्यों में कारण-कार्य संबंध बतलाने का मतलब यह होता है कि बिलकुल स्थूल रूप में बतलाएँ एक-दूसरे से कैसे प्रभावित होता है, एक से शक्ति निकलकर दूसरे में कैसे प्रवेश कर उसमें क्रिया या प्रतिक्रिया उत्पन्न करती है। परन्तु कारणता की अवधारणा इस प्रकार की किसी स्थूल प्रक्रिया से आवश्यक रूप से संबद्ध नहीं है। भौतिक क्षेत्र में ही ऐसे अनेकों क्षेत्र हैं जहाँ एक तत्त्व दूसरे का कारण है पर स्थूल रूप से यह किसी को दृष्टिगोचर नहीं होता कि एक दूसरे पर सचमुच किस प्रकार असर डालता है। हम सदैव कारणता का वह रूप खोजते हैं जो एक गेंद का दूसरे गेंद से टकराकर दूसरे में गति पैदा करने में है, पर इस प्रकार की कारणता की प्रकृति के हर क्षेत्र में दृष्टिगोचर होना संभव नहीं है और इसलिये हर जगह इसकी माँग करना बुद्धिमानी नहीं है। मन तथा शरीर अथवा मानसिक एवं शारीरिक क्रियाओं में जिस प्रकार की कारणता है, वह कारणता की इसी प्रकार की सूक्ष्म तथा दृष्टिगोचर श्रेणी में आती है।

पर उपर्युक्त रूप में क्रिया-प्रतिक्रियावाद संबंधी कारणता को सार्थक तथा उचित ठहराने का मतलब यह नहीं कि हम मानते हैं कि मन-शरीर संबंध-विषयक यह सिद्धान्त दोषरहित है तथा उक्त संबंध की समुचित व्याख्या कर देता है। कम-से-कम दो दोषों की तो चर्चा यहाँ की ही जा सकती है।

प्रथम कुछ लोगों का मानना है कि क्रिया-प्रतिक्रियावाद ऊजा-संरक्षण सिद्धान्त (Law of conservation of energy) के विरुद्ध जाता है। उनका कहना है कि जब शारीरिक घटनाएँ मानसिक घटनाओं को उत्पन्न करती हैं तो इससे शारीरिक ऊर्जा का ह्रास होता है तथा जब मानसिक घटनाएँ शारीरिक घटनाओं को पैदा करती हैं तो इससे शारीरिक ऊर्जा में वृद्धि होती है। यह आक्षेप कहाँ तक उचित है अथवा कहाँ तक ऊर्जा-संरक्षण के सिद्धान्त की सही समझदारी पर आधारित है, यह एक अलग बात है, पर इससे संबंधित विशद विवेचन में हम यहाँ नहीं जाएँगे। दूसरी आलोचना जो विशेषकर *डेकार्ट* के मत के आलोक में अधिक यथोचित मालूम पड़ती है वह यह है कि जब मन तथा शरीर का स्वरूप एक-दूसरे से इतना भिन्न है, बल्कि एक-दूसरे का घोर विरोधी (Diametrically opposed) है, तो फिर दोनों में कारण-कार्य का संबंध कैसे स्थापित होता है ? यह आलोचना भी बिल्कुल अन्तिम तथा निर्णायक रूप में उचित नहीं मानी जा सकती और इसलिये यहाँ भी विवेचन संभव है, पर उसकी विशदता में भी यहाँ हम नहीं जाएँगे।

2. समानान्तरवाद (*Parallelism*)

इस सिद्धान्त के अन्तर्गत यह माना जाता है कि मानसिक तथा शारीरिक घटनाओं में कारण-कार्य अथवा क्रिया-प्रतिक्रिया जैसा कोई संबंध नहीं है, दोनों में कभी किसी स्तर पर कोई संपर्क नहीं होता। दोनों मानो उन दो समानान्ती रेखाओं की तरह है जो सदैव अगल-बगल रहती हैं, पर दोनों में कभी कोई संपर्क नहीं होता। मानसिक तथा शारीरिक घटनाएँ भी इसी प्रकार साथ-साथ चलती हैं, एक के अनुरूप दूसरे क्षेत्र में भी घटनाएँ स्वतः घटती रहती हैं। दोनों के बीच एक ऐसा अनिवार्य सह-संबंध (correlation) है कि एक में परिवर्तनों

Scanned by TapScanner

के अनुरूप दूसरे में भी स्वतः परिवर्तन हो जाते हैं। दोनों के बीच इस सह-संबंध में कहीं कोई खाई (gap) नहीं है। कहा जा सकता है कि दोनों के बीच एकैक सह-संबंध (one-to-one correlation) हैं ताकि एक में संपन्न क्रियाओं के अनुरूप दूसरे में भी क्रियाएँ स्वतः संपन्न हो जाती है। एक शारीरिक घटना किसी मानसिक घटना को उत्पन्न नहीं करती, बल्कि किसी दूसरी शारीरिक घटना को उत्पन्न करती है, पर एक सहसंबंधित (correlated) रूप में अनुरूप मानसिक घटनाएँ भी एक के बाद एक स्वतः घटित होती चली जाती हैं। *स्पीनोजा* को इस मत का पोषक माना जा सकता है।

अब यदि यह पूछा जाय कि ऐसा क्यों होता है, कैसे होता है जो इसका एक उत्तर *लाइबनित्स (Leibnitz)* के पूर्व-स्थापित सामंजस्य (Pre-established Harmony) सिद्धान्त में मिलता है। *लाइबनित्स* का मानना है कि मानसिक तथा शारीरिक घटनाओं के बीच ईश्वर ने पहले से ही एक ऐसा सामंजस्य या छन्द स्थापित कर दिया है कि एक के अनुरूप स्वतः दूसरे क्षेत्र में घटनायें घटती जाती हैं। इस पूर्व-स्थापित छन्द के अन्तर्गत ऐसा लगता है कि मानसिक क्रियाएँ शारीरिक क्रियाओं को तथा शारीरिक क्रियाएँ मानसिक क्रियाओं को प्रभावित करती हैं, पर ऐसा कुछ है नहीं, दोनों का सहसंबंध पूर्वस्थापित हैं।

समानान्तरवाद के विरुद्ध एक महत्त्वपूर्ण आक्षेप यह है कि यद्यपि यह मानसिक तथा शारीरिक क्रियाओं के बीच किसी कारण-कार्य संबंध को अस्वीकार करता है, पर एक दृष्टि से यह सिद्धान्त कारण-कार्यवाद से भिन्न नहीं है। मान लिया जाय $श_1$, $श_2$, $श_3$, ... आदि शारीरिक परिवर्तनों के क्रम हैं तथा $म_1$, $म_2$, $म_3$ ..... आदि सहसंबंधित मानसिक क्रियाओं के क्रम हैं। अब चूँकि प्रत्येक शारीरिक परिवर्तन के अनुरूप अनिवार्य रूप से मानसिक परिवर्तन होता है, इसलिये कहा जा सकता है कि उदाहरण के लिये $म_3$ के बिना $श_3$ नहीं हो सकता, यानी, दूसरे शब्दों में, $म_3$ $श_3$ की अनिवार्य शर्त है। फिर $श_3$ $म_3$ के लिये पर्याप्त शर्त हैं, चूँकि $श_3$ के होने पर $म_3$ का होना अपरिहार्य है और इस प्रकार यदि शारीरिक तथा मानसिक परिवर्तन एक-दूसरे के साथ अनिवार्य तथा पर्याप्त शर्त्तों (Necessary and sufficient conditions) के बंधन में बँधे हुए हैं, और यदि ऐसा है तब तो यहाँ भी कारणता की अवधारणा चली ही आती है।

यदि समानान्तरवाद के साथ *लाइबनित्स* के उपर्युक्त सिद्धान्त को जोड़ा जाय तब तो कहना पड़ेगा कि सारी प्रक्रिया के पीछे ईश्वर द्वारा स्थापित एक छन्द को मानकर यह या तो समय को ही समाप्त कर देता है या एक रहस्यात्मक स्तर पर समस्या का समाधान प्रस्तुत करता है जो कोई समाधान नहीं है। एक बार ईश्वर का सहारा ले लेने पर तो सारी समस्या का ही अन्त हो जाता है या यह कहा जाय कि किसी भी समस्या का समाधान स्वतः निकल आता है।

3. उपोत्पादवाद *(Epihenomenalism)*

यह सिद्धांत मन को शरीर की मात्र एक छाया (shadow) के रूप में लेता है, इसलिये इनके अनुसार समस्त तथाकथित मानसिक परिवर्तन शारीरिक परिवर्तनों की ही छाया या उप-उत्पाद है। जिस प्रकार शरीर के गतिशील होने से छाया भी स्वतः गतिशील हो जाती है, उसी प्रकार शारीरिक परिवर्तनों के साथ मानसिक परिवर्तन होते हैं। यह भी कहा जा सकता है कि शारीरिक परिवर्तन मानसिक परिवर्तनों को उत्पन्न (cause or produce) करते हैं, पर मानसिक क्रियाएँ शारीरिक क्रियाओं को उत्पन्न नहीं कर सकतीं, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार शारीरिक गति उसकी छाया में भी गति पैदा कर देती है पर छाया शरीर में गति पैदा

Scanned by TapScanner

नहीं कर सकती। एक प्रकार से यह एकतरफा कारणता (one way causation) का सिद्धान्त है।

व्यावहारिक स्तर पर खड़े होकर देखने से इस सिद्धान्त में स्पष्ट दोष मालूम पड़ते हैं। यह कहता है मानसिक क्रियाएँ शारीरिक क्रियाएँ उत्पन्न नहीं करतीं, पर हम तो स्पष्ट देखते हैं कि इच्छाएँ (volition) शरीर को गतिशील बनाती हैं। हमे कहीं बैठे रहते हैं पर यदि हमारे अन्दर यह विचार होता है या हमें यह इच्छा होती है कि हम अमुक जगह जायँ तो तुरंत ही हमारा शरीर गतिशील जो जाता है और हम उठकर चलने लगते हैं। फिर इस सिद्धान्त की दोषपूर्णता इस बात से भी स्पष्ट होती है कि चूँकि इसके अनुसार मानसिक क्रियाएँ शारीरिक क्रियाओं के बिलकुल कारण नहीं है, इसलिये मन के बिना भी यह संसार वैसा ही होता, जैसा अभी है। पर हम तो यह स्पष्ट देखते हैं कि ऐसा नहीं है, चूँकि विचारों, इच्छाओं आदि के अभाव में बड़ी-बड़ी योजनाओं, बड़े-बड़े मकानों, बड़े-बड़े पुल आदि का संसार में नामोनिशान नहीं होता और दुनिया वर्तमान सांसार से बिलकुल एक भिन्न दुनिया होती।

4. द्विपहलू सिद्धान्त *(Double Aspect Theory)*

इस सिद्धान्त के अनुसार मन तथा शरीर एक ही आधारभूत तत्त्व के दो पहले हैं, मानों एक ही सिक्के के दो पार (sides) हों। आधारभूत तत्त्व खुद क्या है, किस स्वरूप का है, यह तो हमें पूर्णरूपेण ज्ञात नहीं है, पर मन तथा शरीर नामक इन्हीं दो पहलुओं के माध्यम से हम उसे जानते हैं। कुछ इसी प्रकार के विचार *स्पिनोजा* के हैं जो मूलभूत सत्ता को द्रव्य (substance) मानते हैं तथा यह मानते हैं कि मन तथा शरीर (अथवा जड़ तत्त्व – Matter) इसी द्रव्य के दो अभिन्न गुण (Attributes) हैं। इस प्रकार ये दोनों एक द्रव्य के दो अभिन्न पहलू हैं।

परन्तु इन सारी बातों से यह कहाँ स्पष्ट हो रहा है कि मानसिक घटनाओं (मन) तथा शारीरिक घटनाओं में संबंध कैसे स्थापित होता है, किस प्रकार एक के अनुरूप दूसरे में भी क्रियाएँ होती हैं अथवा एक में हुए परिवर्तन दूसरे में भी परिवर्तन लाते हैं ? सिर्फ यह कह देने से कि दोनों एक ही आधारभूत द्रव्य के दो पहलू हैं, दोनों के बीच संबंध की व्याख्या नहीं हो पाती। यदि कहने का तात्पर्य यह हो कि एक ही आधारभूत तत्त्व के दो अभिन्न पहलू होने के कारण दोनें के संबंध पूर्व-निर्धारित (Pre-ordained) हैं, तब तो यह सिद्धान्त *लाइबनित्स* के पूर्व-स्थापित छन्द की ही तरह का हो गया और इसलिये यह व्याख्या एक रहस्यात्मक स्तर की व्याख्या हो गई।

5. तादात्म्य सिद्धान्त *(Identity Theory)*

इसके अनुसार शारीरिक तथा मानसिक घटनाएँ अलग-अलग घटनाएँ हैं ही नहीं ताकि उनमें संबंध ढूँढ़ा जाय। दोनों अभिन्न हैं। हमारे मस्तिष्क में जो कुछ क्रियाएँ होती हैं, विशेष कर प्रमस्तिष्क बल्कुट (cerebral cortex) में, उन्हें ही हम मानसिक क्रियाओं का नाम देते हैं। जिस प्रकार 'Morning star' तथा 'Evening star' के शब्दार्थ भिन्न-भिन्न हैं, पर दोनों की वस्तुवाचकता या सूचकता (Denotation or Reference) एक ही होता है, उसी प्रकार शारीरिक क्रियाओं तथा 'मानसिक क्रियाओं' के शब्दार्थ भिन्न-भिन्न हैं, पर दोनों एक ही तथ्य का बोध कराते हैं और वह है 'मस्तिष्क की क्रियाएँ' (Brain-processes)। मस्तिष्क की क्रियाएँ शारीरिक क्रियाएँ हैं, इसलिये यह सिद्धान्त उपर्युक्त रूप में तादात्म्य कप प्रतिपादन

Scanned by TapScanner

कर वस्तुतः एक प्रकार के भौतिकवाद (Materialism) या व्यवहारवाद (Behaviorism) का ही प्रतिपादन करता है।

पर विश्लेषण करने पर सिद्धान्त स्वीकारने योग्य नहीं लगता। कुछ स्पष्ट कठिनाइयाँ समाने आती हैं। कहा जाता है कि मस्तिष्क में चलने वाली क्रियाएँ मानसिक क्रियाओं के साथ अभिन्न है, पर मानसिक क्रियाओं का तो हमें स्पष्ट ज्ञान होता है, जबकि इस बात का कोई ज्ञान नहीं होता कि क्रिस प्रकार की मस्तिष्क संबंधी क्रियाएँ संपन्न हो रही हैं। उदाहरण के लिये, जब कोई विचार हमारे मन में चल रहा है, तो हमें इस बात का स्पष्ट ज्ञान होता है कि क्या विचार चल रहे हैं पर उस वक्त कौन-सी मस्तिष्क की क्रियाएँ चल रही हैं, इसका तो हमें ज्ञान भी नहीं होता। यहाँ यह कहा जा सकता है कि यह एक ऐसी कठिनाई है जिसका निराकरण संभव है। यंत्रों के द्वारा जटिल जाँच की क्रिया संपन्न कर यह जाना जा सकता है कि कौन-सी क्रियाएँ मस्तिष्क में तत्काल चल रही हैं। पर इससे सचमुच कठिनाई का निराकरण नहीं होता। यहाँ दो बातें हैं – (i) जिस साक्षात् रूप में व्यक्ति को अपने विचार प्रक्रिया का अनुभव या ज्ञान हो रहा है, उस रूप में उसे अपने मस्तिष्क की क्रियाओं का ज्ञान कभी संभव नहीं। (ii) यंत्रों के द्वारा जाँच और उस जाँच के द्वारा मस्तिष्क की क्रियाओं का ज्ञान एक सार्वजनिक चीज हो सकती है या सचमुच है, पर विचार-क्रिया का या ऐसी ही किसी अन्य मानसिक क्रिया का ज्ञान सिर्फ उस व्यक्ति तक ही सीमित है जिसके अन्दर विचार-क्रिया या अन्य कोई मानसिक संवेदना चल रही है। इन बातों के आलोक में तो ऐसा नहीं लगता कि मस्तिष्क की क्रियाएँ तथा मानसिक क्रियाएँ तात्विक रूप में अभिन्न हैं और भेद है सिर्फ शब्दावली का। दोनों का भेद तात्विक स्तर का भेद मालूम पड़ता है।

फिर 'तादात्म्यता' (Identity) का सचमुच यहाँ क्या अर्थ है ? (क) क्या यह अर्थ है कि मस्तिष्क की क्रियाएँ सचमुच मन की क्रियाएँ हैं जिनका अन्तर्निरीक्षण के द्वारा प्रत्यक्ष ज्ञान हो सकता है ? (ख) क्या यह अर्थ है कि मानसिक क्रियाएँ मस्तिष्क की क्रियाएँ यानी भौतिक क्रियाएँ हैं जिनका रूप-आकार है और जिनका चित्र खींचा जा सकता है ? दोनों में से किसी अर्थ में लेने पर हम स्पष्ट देख सकते हैं कि हमारे समाने विरोधाभास खड़े हो जाते हैं। तो आखिर तादात्म्यता को किस अर्थ में समझा जाया ? यहाँ पर **जे० शैफर** के निम्नलिखित शब्द बड़े सटीक रूप में सार्थक हैं – *"When we say the Morning Star and the Evening Star are indentical, we mean that both names refer to one physical object at different times in different places... what do we mean in the case of the Identity Theory ? Do we mean (1) that certain brain states are mental, that they can be directly known by introspection, that someone without the slightest training in neurology can know without observation that certain incredibly complex events are going on in his infertoemporal cortex ? Do you mean (2) that mental events are physical, that the thought that today is a holiday, for example, has a shape, a size, a charge, or a colour, that it can be photographed, or perhaps smelled ? Both of these interpretations seem most paradoxical."*[1]

---

1. जॉन हॉस्पर्स द्वारा अपनी पुस्तक *An Introduction to Philosophical Analysis* के पृ० 404 पर उद्धृत।

Scanned by TapScanner